

३८ वीं गाथा, टीका, फिर से, कल तो हिन्दी में चला था न!

यह ३८ गाथा, जीव अधिकार की पूर्णता की गाथा है। यह जीव अधिकार यहाँ पूर्ण होता है। अर्थात्? कि जीव का कथन जो सर्वज्ञ ने, सन्तों ने कहा, ऐसा जिन्होंने अन्दर जाना, अनुभव किया और दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन हुआ, वह जीव कैसा है? उसका यहाँ वर्णन है।

अब इसमें - पाठ में तो यह है 'अहं' परन्तु 'अहं' पहले यह जो 'अहं' नहीं समझा

था, वह कैसा था ? अहं शब्द है न ? तो अहं तो स्वयं निर्णय करता है कि मैं यह हूँ। परन्तु यह कौन ? कि पहले तो अज्ञानी था, उसकी यहाँ बात की है। यह उसमें से 'मैं' में से निकाला है।

(टीका) जो, अनादि मोह.... मोह से कहो या अज्ञान से, यह दोनों एक ही है। मोहरूप अज्ञान से... ऐसा। उन्मत्तता के कारण.... पागल था, पागल। आहाहा! जो यह शरीर है, वह मैं हूँ; पाप के परिणाम हैं, वह मैं हूँ। शुभराग जो दया, दान का विकल्प जो शुभराग है, वह मैं हूँ — ऐसे मोह से पागल हो गया था। मोह शब्द से (अर्थात्) अज्ञान से, स्वरूप का भान नहीं होता; इस कारण उस विकारी परिणाम को अपना मानता था, शरीर को निज मानता था। उसके कारण वह अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था.... अत्यन्त मूढ़ - अज्ञानी था। आहाहा! देखो, उसे यहाँ समझाते हैं।

जिसे आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति कौन है ? उसकी (मुद्दे की) खबर नहीं और इन पुण्य-पाप के भाव, शरीर, पर में मोह के कारण-अपना मानकर पागल उन्मत्त हुआ है। आहाहा! वह अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था.... अत्यन्त अज्ञानी था - ऐसा कहते हैं।

उसे विरक्त गुरु से.... निर्ग्रन्थ अथवा राग से रक्तरहित, स्वभाव में रक्तवाले सन्तों से। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव-राग, उससे विरक्त है और स्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु में जो रक्त है, ऐसे सन्त, मुनि — ऐसे गुरु ने उसे समझाया, भाई! प्रभु! तू कौन है ? निरन्तर समझाये जाने पर.... इसका अर्थ यह कि समझाया तो भले एक बार या दो बार परन्तु इसने बारम्बार (उसका ही) घोलन किया कि ओहो! यह गुरु तो ऐसा कहते हैं कि बहिर्मुख की जो वृत्तियाँ पुण्य-पाप की है, वह तू नहीं है। तेरी चीज अन्दर से अलग है, भाई! आहाहा!

उसे बारम्बार समझाने पर अथवा बारम्बार समझ कर राग से भेद करने के अभ्यास से आहाहा! जो किसी प्रकार से समझकर,... है ? सावधान होकर,... समझा, सावधान हुआ। जो पर में - राग और पुण्यादि भाव में सावधान था, वह गुलॉट खाकर स्वरूप में सावधान हुआ। आहाहा! वहाँ मोह कहा था न ? मोह अर्थात् पर में सावधान था। आहाहा! वह जीव, 'अहं' मैं कौन हूँ ? इसकी व्याख्या फिर लेंगे।

जो किसी प्रकार से समझकर, सावधान होकर, जैसे कोई मुट्टी में रखे हुए सोने को भूल गया हो... हाथ में सोना हो और भूल जाये, फिर याद करे, आहाहा! कि सोना तो हाथ में है। कहीं अन्यत्र रखा हो, यहाँ तो मुट्टी में लिया है न? उसे फिर स्मरण करके उस सोने को देखे.... कि स्वर्ण तो यह रहा, मेरे हाथ में सोना है। इस न्याय से, अपने परमेश्वर.... आहाहा! परम ईश्वर, परमेश्वर, ज्ञानेश्वर, दर्शनेश्वर, चारित्रेश्वर, वीर्येश्वर, शान्ति ईश्वर, ज्योति ईश्वर, कर्ताकर्मकरणादिश्वर - ऐसी-ऐसी अनन्त ईश्वर की शक्तिवाला भगवान (निजात्मा) आहाहा! अपना परमेश्वर अर्थात् स्वयं का परमेश्वर, ऐसा कि दूसरे भगवान का परमेश्वर नहीं। आहाहा!

अपने परमेश्वर को भूल गया था.... आहाहा! उसे जानकर.... जिसे भूला था, उसे जानकर... आहाहा! रागादि अपने मानकर भगवान को (निजात्मा को) भूल गया था। अपना स्वरूप परमेश्वर को भूल गया था। उसे जानकर, उसका श्रद्धान कर.... ज्ञान की पर्याय में उस ज्ञायक परमेश्वर को जाना कि यह तो परमानन्दमूर्ति प्रभु पूर्ण प्रभु है - ऐसा जिसने-समकिति ने ज्ञान की पर्याय में जाना, उसका उसने श्रद्धान किया। आहाहा! जाने हुए का श्रद्धान होता है, जाने बिना की श्रद्धा,... वह जाना नहीं (जाने बिना) उसकी श्रद्धा क्या? जानने में आया कि भगवान आत्मा शुद्ध परमेश्वर आनन्दस्वरूप मैं हूँ, उसे जानकर, उसका श्रद्धान कर और उसका आचरण करके.... यहाँ तो तीनों पूर्ण करने हैं न यहाँ तो? उसे जानकर, उसका श्रद्धान कर.... और उस भगवान आत्मा का आचरण करके... आहाहा! आनन्द के सागर का आचरण करके, आनन्द में अन्दर से क्रीड़ा की, आहाहा! जिसने अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को जाना, अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को जानकर प्रतीति की; जो राग में भटकता और रमता था, वह अब आनन्द में रमने लगा। आहाहा! यह चारित्र! अरेरे! लोग कुछ का कुछ करते हैं - शुभयोग ही होता है, सब संयम और चारित्र... प्रभु... प्रभु... प्रभु! भाई! यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय (है)। इसका शुद्धोपयोग में ज्ञान हो, इसकी श्रद्धा समकित में हो, इसका आचरण आनन्द की रमणता में हो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, उसका ज्ञान हो; ज्ञान होकर उसकी प्रतीति हो; प्रतीति हुई और वह ज्ञान में आनन्द में रमे। आहाहा! यह बात है। यह आत्मा का आचरण, इसे चारित्र कहा जाता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में रमे,

उसे यहाँ आत्मा का आचरण, आनन्द का आचरण, चारित्र का आचरण कहने में आता है। आहाहा!

(- उसमें तन्मय होकर).... आचरण करके - इसका अर्थ यह किया। जो सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ,.... सम्यक् प्रकार से, सच्चे प्रकार से, जैसा था वैसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आत्माराम हुआ। आहाहा! आत्मा, आत्माराम हुआ। आत्मा जो राग में हरामपने रमता था, वह आत्मा, आत्मा में रमने लगा। आहाहा! यह अभी 'अहं' अहं की व्याख्या है। है न? 'अहं' 'एक्को' बाद में। अहं - मैं कैसा हूँ, उसकी पहली व्याख्या। यह तो उसमें भी आता है न भाई! (समयसार गाथा) ७३ में आता है। 'अहमेक्को खलु सुद्धो' वहाँ यह लिया है - अनादि-अनन्त चैतन्यमूर्ति भगवान प्रत्यक्ष प्रतिभासमय वह मैं हूँ। ७३ (गाथा में) वहाँ भी 'अहमेक्को' वहाँ भी एक्को है - एक हूँ। षट्कारक के परिणमनरहित हूँ, पर्याय में। आहाहा! मेरा 'अहं' का अस्तित्व, शुद्ध चैतन्यघन का ज्ञान, उसका श्रद्धान, उसका आचरण, ऐसा आत्माराम हुआ। आहाहा! सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ,.... शास्त्र की बात सुनी थी, धारण की थी कि आत्मा ऐसा है, इससे कोई वह सम्यक् प्रकार से आत्माराम नहीं हुआ। आहाहा! यह शास्त्र के पठन से तो इसे आ गया था, ग्यारह अंग पढ़ा है, उसमें तो यह आया था कि भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु... परन्तु वह धारणा में था; इसलिए वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! यह तो सम्यक् प्रकार से आत्माराम हुआ। सच्चे प्रकार से आत्मा का ज्ञान और आत्मा का श्रद्धान और आत्मा की रमणता हुई। आहाहा!

श्रोता : सच्चा प्रकार क्या और खोटा प्रकार क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा तो कहा न पहले! यह शास्त्र सुनकर धारणा की थी, वह आत्माराम खोटा था। आहाहा! यह तो बात की। शास्त्रज्ञान से सुनकर जाना कि आत्मा ऐसा है और भगवान ऐसा है। यह तो धारणा का ज्ञान, वह कहीं सच्चे प्रकार से आत्माराम नहीं हुआ। आहाहा! यह तो सम्यक्प्रकार से आत्माराम हुआ।

जैसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है, उसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर और उसकी प्रतीति करके तथा उसमें रमने लगा, वह सच्चे प्रकार से आत्माराम हुआ। आहाहा! 'निज

पद रमै सो राम कहिये।' आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... ३८ गाथा है न! जीव अधिकार की अन्तिम, पूर्णता की गाथा। आहाहा!

आत्माराम हुआ, वह मैं ऐसा अनुभव करता हूँ.... है न? 'अहं' का अर्थ है, 'अहं' की बात है, अकेले 'अहं' का अर्थ है। आहाहा! 'अहं' मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ.... आहाहा! मैं एक चैतन्यमात्र भगवान, चैतन्यज्योति जलहल ज्योति, चैतन्य के तेज के नूर का पूर ऐसी ज्योति मैं आत्मा हूँ। आहाहा! मैं तो एक जानन-देखन, दृष्टा ज्ञाता, ऐसी जो चैतन्यज्योति, वह मैं हूँ; मैं राग भी नहीं, पुण्य भी नहीं, पर्याय जितना भी नहीं। आहाहा! 'मैं' 'अहं' मैं एक, मैं चैतन्यमात्र, चैतन्यमात्र, जिसमें राग की गन्ध नहीं, जिसमें शुभराग आदि का असर नहीं, आहाहा! ऐसा भगवान चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ। चैतन्यमात्र ज्योति... अग्नि की ज्योति है, वह तो ऊष्ण ज्योति है। यह चैतन्यमात्र ज्योति जानन-देखन चैतन्य ज्योतिस्वरूप। आहाहा! इस प्रकाश की — चैतन्य प्रकाश की जलहल ज्योतिस्वरूप वह मैं, वह आत्मा। है? आहा! चैतन्यमात्र ज्योति आत्मा हूँ, वह मैं आत्मा हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि ने अन्तर में इस प्रकार जाना है। जो अज्ञानरूप से अप्रतिबुद्ध था, उसे समझाया गया, तब वह इस प्रकार समझा! आहाहा!

अरेरे! यह इस आत्मा को जाना, वह शुभभाव से ज्ञात होता होगा? अरे! भगवान क्या करता है, प्रभु! क्या करता है भाई! आहाहा! शुभराग तो विकार और आस्रव है। वहाँ ऐसा कहा है न? ७३ गाथा में 'अहमेक्को' आस्रवों से कैसे निवृत्तता है? ऐसा शब्द है न? ७३ में, वहाँ शीर्षक ऐसा है कि आस्रवों से कैसे निवृत्ते? कि इस प्रकार - मैं अनादि-अनन्त चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। मेरी पर्याय में राग का परिणमन तो नहीं, परन्तु षट्कारक (का) निर्मल परिणमन है, उससे मेरी अनुभूति-तत्त्व भिन्न है, वह मैं हूँ। ७३ (गाथा) यह गाथा तो भाई ने ली है - उसने देवचन्दजी ने! देवचन्दजी श्वेताम्बर हैं न, उन्होंने ७३ गाथा ली है। उनका एक आगम है न, पहले पढ़ा था। (संवत्) ७०-७१ (१९७०-७१) उनका क्या कहलाता है? आगमसार। है यहाँ है, उसमें यह गाथा ली है। कहाँ से ली है ऐसा उन्होंने नहीं लिखा। है समयसार की, वहाँ उसमें कहाँ था?

आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात

होता है;.... मैं प्रभु चैतन्यमात्र प्रकाश की जलहल ज्योति, चैतन्य ज्योति के नूर के तेज का पूर - ऐसा मैं आत्मा, वह मेरे अनुभव से ज्ञात होता है। आहाहा! है ? **कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;....** वह राग से नहीं। मैं ऐसा जो चैतन्यमात्र ज्योति हूँ, उस चैतन्यमात्र ज्योति की परिणति से मैं ज्ञात होता हूँ। **मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;....** आहाहा! यहाँ तो मति और श्रुतज्ञान को भी प्रत्यक्ष गिन दिया है। आहाहा! जिसे आत्मा को जानने के लिये मति-श्रुतज्ञान की अपेक्षा है परन्तु इसके अतिरिक्त राग और मन की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! अरेरे!

मेरे ही अनुभव से.... यह शब्द पड़ा है - 'ही' पड़ा है। मेरे ही अर्थात् चैतन्यमात्र ज्योति के स्वभाव की परिणति से ही मुझे मेरा अनुभव है। आहाहा! **मेरे ही... है ? अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;....** आहाहा! यह तो धीरजवान के काम हैं बापू!

मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;.... आहाहा! मेरे आत्मा का शान्त और वीतरागी पर्यायरूप अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। ऐसी बात है प्रभु! आहाहा!

यह कल तो लिया था, फिर से लिया जा रहा है। यह 'अहं' की व्याख्या है। 'अहं' की यह व्याख्या है। 'एक्को' की बाद में आयेगी। आहाहा! समझ में आया? वहाँ 'अहं' की व्याख्या की है (समयसार गाथा) ७३ में। 'अहं' मैं यह प्रत्यक्ष अनादि-अनन्त चैतन्य प्रत्यक्ष ज्योतिमात्र हूँ। आहाहा! वहाँ ऐसा लिया है। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य की टीका... गजब है! सन्तों ने गजब काम किया है!! आहाहा! दिगम्बर सन्त, हों! आहा!

श्रोता : दूसरे कौन सन्त हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे कोई है ही नहीं। आहाहा! सादी भाषा, सादा भगवान रागरहित, उसे समझाया है, प्रभु! तू कौन है भाई! आहाहा! बालक हो या स्त्री हो या पुरुष हो, यह तो देह के नाम हैं सब। भगवान, अन्दर जो भगवान है, वह बालक कहाँ और वृद्ध कहाँ, युवा कहाँ और स्त्री कहाँ, पुरुष कहाँ; आहाहा! वह तो चैतन्यमात्र ज्योति, वह आत्मा मैं हूँ, यह मेरे अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह मेरी वीतरागी

अनुभवदशा, उससे मैं प्रत्यक्ष ज्ञात होता हूँ। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! ऐसा मार्ग है। इसे सुनने को मिलता नहीं, भाई! इसे कब विचार करे? क्या करे? आहाहा! अभी ऐसी दुर्लभ चीज हो गयी है। अभी तो यह शुभयोग है, वही सब है, अभी यह शुद्धोपयोग और ऐसा है ही नहीं... अरे भगवान! यह पंचम काल के सन्त, पंचम काल के श्रोता को कहते हैं और पंचम काल का श्रोता इस प्रकार समझता है। पंचम काल का श्रोता है न यह? आहाहा!

मैं मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है; वह मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा – ज्योतिस्वरूप आत्मा; ज्योतिवाला भी नहीं। **चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ...** आहाहा! **जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;**... आहाहा! मेरी निर्मल पर्याय से – मेरे स्वभाव की निर्मल पर्याय से मुझे प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। आहाहा! मैं जो हूँ निर्मल पर्यायवाला, उस निर्मल पर्याय से मैं ज्ञात होता हूँ। राग और निमित्त से तथा विकल्प से नहीं। आहाहा! नहीं न कहा, अस्ति से बात की है। आहाहा!

बापू! यह तो भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव के ये कथन हैं। ये सन्त जगत को उन्हें प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि जिसे आत्मा ज्ञात हुआ, वह अपने स्वरूप से ज्ञात होता है। आहाहा! उसका स्वरूप वह राग और पुण्य-पाप इसका स्वरूप नहीं है। आहा! उसका स्वरूप तो चैतन्यमात्र ज्योतिस्वरूप (है) तो उस चैतन्यज्योति की जो परिणति है, उससे वह ज्ञात होता है। आहाहा!

अमृत बहाया है। आहाहा! अरे! लोगों को कठिन लगे, बापू! क्या हो भाई? मार्ग ही यह है। वहाँ उसे पहले श्रद्धा में तो निर्णय करे, भले बहिर्लक्ष्यी श्रद्धा, उसमें निर्णय तो करे कि आत्मा तो अपने स्वरूप से ही ज्ञात हो, ऐसी चीज है। वह गुरु से नहीं, देव से नहीं, शास्त्र से नहीं, राग से नहीं, मन से नहीं। आहाहा!

मेरे ही.... मेरे 'ही' एकान्त कर दिया है। अनेकान्त ऐसा नहीं कि राग से भी ज्ञात हो, मन से भी ज्ञात हो, विकल्प से भी ज्ञात हो, देव से भी ज्ञात हो, इससे भी ज्ञात हो और उससे भी ज्ञात हो — इसका नाम अनेकान्त? यह अनेकान्त नहीं है प्रभु! आहाहा! मैं तो मेरा स्वभाव-चैतन्यज्योति, जलहल ज्योति-जलहल ज्योति, ऐसी चैतन्य की परिणति निर्मल वीतरागी – ऐसी परिणति से मैं ज्ञात होऊँ — ऐसा आत्मा मैं हूँ, उससे मैं

अनुभव करता हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! छोटाभाई! ऐसी बातें हैं। कहाँ गये शान्तिभाई? ऐसी बातें हैं। यह कलकत्ता में कहीं मिले ऐसा कहीं नहीं है, वहाँ पैसा मिले, धूल! आहाहा!

अरे! यह तत्त्व की बात भी भाई! आहाहा! वस्तु है न, वस्तु - प्रभु! है न! वह ज्ञायक है न, वह निष्क्रिय-पर्याय से भी रहित निष्क्रिय है न! वह ध्रुव है न! वह सामान्य है न! उस वस्तु को जहाँ दृष्टि में लेता है। आहाहा! वह मेरे अनुभव की पर्याय से मैं ज्ञात होऊँ ऐसा हूँ। आहाहा! दूसरे प्रकार से नहीं, ऐसा इसमें आ गया। आहाहा!

मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;.... यह वचन है, प्रत्यक्ष, लो! अभी तो केवल (ज्ञान) हुआ नहीं, तो भी कहते हैं, प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। आहाहा! मेरा भगवान चैतन्यज्योतिस्वरूप है, उसे मेरी शुद्ध परिणति से मैं जानता हूँ। वह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरी नजर में दूर रहता है — ऐसा नहीं है। मेरी नजर में वह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। शास्त्र से ज्ञात होता हूँ, यह भी नहीं है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान हुआ - ग्यारह अंग का (ज्ञान हुआ), इसलिए मैं ज्ञात होता हूँ — ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

मैं तो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता हूँ — ऐसा मैं हूँ। आहाहा! यहाँ तक 'अहं' का आया। क्या? यहाँ तक 'अहं' 'अहं' की यह व्याख्या हुई। यह मैं... यह मैं... यह मैं... आहाहा!

अब 'एक्को' एक की व्याख्या अब। आहाहा! यह एक्का नहीं होता, उसे एक बैल होता है, क्या समझ में आया? गाड़ी को दो बैल होते हैं, एक्का समझ में आता है? उसमें एक बैल होता है, हमारे एक्का बहुत बार उमराला में गारियाधार जाना होता न, बाहर गाँव, तब तो कहाँ थी रेल और कुछ, मोटर और रेल, घोड़ागाड़ी तब। प्लेग था तो दोनों भाई जाते वह एक्का लेकर जावें। गारियाधार! बाहर गाँव सबेरे से शाम पहुँचे, सबेरे से चले तो शाम को पहुँचें, बाहर गाँव। बारह आना मिले उसे दे। भाई! उसे एक्का कहते हैं। एक्का कहते हैं न?

श्रोता : एक बैल साथ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : बैल होवे एक्का को, वह तो बहुत बार जाते थे एक्का में, उमराला से गारियाधार जाते और हमारी बहन वहाँ थी। तब प्लेग था, यह तो अन्तिम वहाँ गये थे, अन्तिम बराबर याद है। आहाहा! एक्का में बैठे, अंधेरा, सबेरे मेरी माँ ने कहा भाई कन्नू! बहिन को याद कहना – सायं कहना, सायं कहना — ऐसा आता है। क्या कहलाता है? सायं कहना — ऐसा कहा साता! यह ऐसा सायं कहना, बहिन को सायं कहना, बस! यह अन्तिम शब्द इसके बाद गुजर गयी। प्लेग था, आहाहा! शाम को वहाँ पहुँचे बाहर गाँव अमुक दिन बाद सुना कि (माँ) गुजर गयी। वहाँ थे हम गारियाधार.... यह (संवत्) ५९ (१९५९) की बात है, तुम्हारे जन्म के पहले, ५९।

श्रोता : ७५ वर्ष हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ७५ वर्ष पहले, इतने वर्ष हुए, पौने सौ वर्ष हुए परन्तु ताजा ही ऐसा दिखता है, हाँ! आहाहा!

माँ ऐसी कहती – भाई! बहिन को सायं कहना और वहां... आहाहा! बड़े भाई यहाँ थे खुशालभाई, अकेले। वे भी गुजर गये। अरेरे! आहाहा! यह एक्को! एक्को भगवान, जैसे एक बैल से चले, वैसे अकेला एक से चले ऐसा आत्मा! आहाहा!

चिन्मात्र आकार के कारण मैं.... चिन्मात्रस्वरूप, आकार अर्थात् स्वरूप। ज्ञानमात्र स्वरूप के कारण.... ज्ञानमात्र अर्थात् इसमें जो क्रम या अक्रम के जो भेद हैं, वे इसमें नहीं हैं। **चिन्मात्र आकार के कारण मैं....** मैं यह बाद में आया परन्तु चिन्मात्र आकार के कारण मैं, ज्ञानस्वभाव, ज्ञानमात्र। आहाहा! यह... यह... भाग्य, भाग्य, बापू! आहाहा! ऐसी चीज रह गयी है। जगत का भाग्य भाई! आहाहा!

मैं तो ज्ञानमात्र आकार के कारण... चित् अर्थात् ज्ञानमात्र, उसमें दर्शन आ गया। मैं **समस्त क्रमरूप....** यह क्रमबद्ध की यहाँ अभी व्याख्या नहीं है। यहाँ तो क्रम-क्रम से नरकगति, मनुष्यगति, देवगति क्रम-क्रम से होती है। ऐसे क्रमरूप से भी मैं निराला हूँ **तथा अक्रमरूप...** अर्थात् पर्याय अक्रम से है, यह बात यहाँ नहीं है। पर्याय अक्रम है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो अक्रम अर्थात्... क्रम अर्थात् मनुष्यगति, देवगति, एक के बाद एक — ऐसे क्रमरूप और अक्रमरूप – एकसाथ जो योग, लेश्या, कषाय, एकसाथ होते

हैं, वे अक्रम हैं। क्रम गति आदि और अक्रम योग, लेश्या आदि। ऐसे भाव से... आहाहा!
क्रमरूप तथा अक्रमरूप प्रवर्तमान व्यावहारिक भावों.... आहाहा!

श्रोता : पर्यायभावों....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में जो गति आदि के एक अनेक, आहाहा! ऐसे व्यवहारिक भाव... व्यवहारिक तो नव तत्त्व में भी आयेगा परन्तु यह व्यवहारिकभाव शब्द है उसमें। व्यवहारिक नव तत्त्व आयेगें, शुद्ध में (शुद्ध के बोल में) आहाहा! ऐसा है। **समस्त क्रमरूप...** इसमें से कितने ही निकालते हैं, देखो! क्रम-अक्रम दोनों हैं... परन्तु किसकी बात है यह ?

श्रोता : पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पर्याय में गति आदि हों, वे एक के बाद एक क्रम में और एक साथ हों - योग, कषाय, लेश्या वे अक्रमरूप, उनकी बात है। पर्याय में यह होते हैं। समझ में आया ? आहाहा! दीपक जैसा तो लिखा है अन्दर। आहाहा!

श्रोता : दीपक जैसा तो लिखा है परन्तु आँख खोले तब न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं.... अब एक लेना है न ? अहं पहले लिया, वह हो गया। अब 'एक' लेना है। आहाहा! ज्ञानमात्र प्रकाशमात्र चैतन्यचन्द्र-चैतन्य शीतल चन्द्र मात्र। आहाहा! स्वरूप के कारण **आकार...** अर्थात् स्वरूप मैं **समस्त क्रमरूप....** गति-मनुष्य की, एक के बाद एक, देवगति आदि इनसे भी निराला... **अक्रम...** एक साथ योग, लेश्या, कषाय, **अक्रमरूप प्रवर्तमान व्यावहारिक भावों....** ये भेदरूप भाव। आहाहा! इन **व्यावहारिक भावों से भेदरूप नहीं होता....** आहाहा! **इसलिए मैं एक हूँ;**.... यह एक की व्याख्या। आहाहा! समझ में आया ? बापू! यह तो धीरजवान की बातें हैं भाई! यह कहीं कोई बड़े भाषण और ऐसा नहीं यह। यह तो तत्त्व की बात है, भाई! आहाहा! इसे धीरजवान होकर, मध्यस्थ होकर सुने तो यह बात जमे (समझ में आये) ऐसी है। आहाहा!

समस्त क्रमरूप.... समस्त क्रमरूप — एक के बाद एक होनेवाली सब दशायें **अक्रम...** एक साथ होनेवाली सब दशायें, आहाहा! ऐसे **भावों से भेदरूप नहीं होता,**

इसलिए मैं एक हूँ;.... वस्तु अभेद (है) आहाहा! ऐसे अनेक क्रमरूप या अक्रमरूप भावों से भेदरूप नहीं होता; इसलिए मैं एक अभेद हूँ। आहाहा! आहाहा! ऐसे आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ऐसा स्वयं को अनुभव करता है। आहा! समझ में आया? आहाहा! मैं एक हूँ।

अब, शुद्ध का तीसरा बोल। अहं, एक्को, शुद्धो। अब तीसरे बोल की व्याख्या है। आहाहा! **नर,....** मनुष्य, **नारक आदि जीव के विशेष;....** देखो! इस जीव के यह विशेष, जीव की पर्याय... नवतत्त्व में जब भेदरूप लेना हो, तब उसकी पर्याय जो विशेष है, उसे जीव लेना, जीवद्रव्य नहीं लेना। समझ में आया? आहाहा! **नारक आदि जीव के विशेष;....** जीव की विशेष पर्यायें, यह एक बोल। जीव की पर्याय का एक बोल। **अजीव....** पर्याय में अजीव का ज्ञान हो, वह अजीव। जीव कहीं अजीव नहीं होता। **पुण्य....** दया, दान आदि का शुभभाव, लो! यहाँ तो शुभभाव... आहाहा! अरे भगवान! शुभभाव; **पाप....** अशुभभाव, दोनों होकर **आस्रव....** नये आवरण का कारण; **संवर....** पर्याय की संवरदशा... आहाहा! पर्याय की निर्मल संवरदशा; **निर्जरा....** शुद्धि की वृद्धि, और **बन्ध....** राग में अटकना और **मोक्ष...** शुद्धि की पूर्णता। यह **व्यावहारिक नव तत्त्व....** आहाहा! यह पर्याय के व्यावहारिक नव भाव; व्यावहारिक नव तत्त्व, है न? उसमें व्यावहारिक भावों से था, पहले में। इन व्यावहारिक नव तत्त्वों से... आहाहा! इन पर्यायों से, आहाहा! **टंकोत्कीर्ण....** एकरूप स्वरूप। टंकोत्कीर्ण अर्थात् जैसे टांकी से निकाला हो न, एकाकार ऐसा शाश्वत् एक ज्ञायकस्वभाव... **एक ज्ञायकस्वभावरूप....** आया अब यहाँ। आहाहा! उसमें चैतन्य ज्योति लिया, यहाँ ज्ञायकस्वभाव लिया। **एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव के द्वारा.... एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव के द्वारा....** ये व्यवहारिक पर्यायें, जीव की पर्यायें और रागादि समस्त भेदों से भिन्न हूँ। आहाहा! ऐसी गम्भीर बातें! यह ऐसा का ऐसा पढ़ जाये और मान ले... अरेरे! यहाँ तक बात, कल तो आयी थी। लो!

श्रुतसागर ने लिखा है कि अभी तो शुभयोग ही होता है, शुभ उपयोग ही होता है। शुद्ध-शुद्ध होता नहीं। अरे...अरे प्रभु, प्रभु! भाई! अभी आत्मा ज्ञात नहीं होता, ऐसा इसका अर्थ हुआ।

श्रोता : यह सब इस काल का लिखा हुआ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल के प्राणी को कहते हैं और पंचम काल का प्राणी अनुभव करता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे प्रभु! कोई ऐसा कहता है कि ऐसा करके लिखा है, रात्रि को नहीं पढ़ा ?

यह मुमुक्षु ऐसा कहते हैं ऐसा वे लिखते हैं कि शुद्धोपयोग पहले हो और फिर समकित हो, भाई! ऐसा किसने कहा ? ऐसा लिखा ? परन्तु उस शुद्ध उपयोग से समकित हो, शुभ से (होता होवे तो) शुभ तो आस्रव है। आहाहा! अरे प्रभु! क्या करता है ? लोगों में बाहर के त्याग की महिमा, नग्नपना और उसमें अब... आहाहा! लोग उसमें झुक जाते हैं... परन्तु प्रभु! प्रभु! तेरा मार्ग अलग है भाई!

श्रोता : लोग भी वेष में झुकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेष में झुकते हैं। अरेरे! आहाहा! परन्तु वेष तो तेरा एक ज्ञायकदेव है न, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : वह तो निश्चय से, यह तो व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तुझे पता नहीं भाई! आहाहा! यह सब पर्याय के भाव, मोक्षादि सब वेष कहे हैं न, तो इसका अकेला ज्ञायक वेष है। चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति प्रभु ज्ञायकभाव वह तेरा वेष है। यह पर्याय का वेष भी (तेरा) नहीं है — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

प्रभु! यह तो सत्य की बात है प्रभु! यह लोगों को ऐसा लगता है कि हमको अब साधु मानते नहीं, इसलिए अब इस प्रकार चलाया। अरे भाई! ऐसा रहने दे बापू!

श्रोता : दूसरे साधु माने या न माने उसमें उन्हें क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें वस्तु क्या है ऐसा बापू! समझ न भाई! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा द्वारा कथित तत्त्व की बात, श्रोता ने अपने स्वभाव को जाना है, वह यहाँ कहता है। पंचम काल का प्राणी ऐसा कहता है। पंचम काल के सन्तों ने, पंचम काल के श्रोता को कहा था। वह श्रोता इस प्रकार अनुभव करता है। आहाहा! यहाँ चौथे काल की बातें हैं ही कहाँ ? आहाहा! है ?

टंकोत्कीर्ण.... वे पर्याय के नौ भेद हैं न! जीव की विशेष दशायें, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष पर्यायें हैं न? आहाहा! उनके भेदभावों से—व्यवहारिक नौ तत्त्वों से, टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव, वह तो ऐसा का ऐसा भगवान अदबदनाथ ज्ञायकस्वभाव से भरपूर प्रभु अकेला, आहाहा! उसके द्वारा, **अत्यन्त भिन्न हूँ....** इन पर्यायों से अत्यन्त भिन्न हूँ। आहाहा! नारकी आदि और संवर-निर्जरा की पर्याय से भी अत्यन्त भिन्न हूँ। आहाहा! मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न, मुक्तस्वरूप हूँ। मेरा स्वरूप ही मुक्त है। पर्याय से मुक्ति, यह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? बद्ध से तो रहित हूँ, आस्रव के राग से तो रहित हूँ परन्तु मोक्ष की पर्याय जो एक समय की निर्मल (है), उसमें मैं नहीं आता; मैं तो उससे भिन्न हूँ। आहाहा!

मैं एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव द्वारा, **एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव के द्वारा अत्यन्त भिन्न हूँ....** अत्यन्त भिन्न हूँ। आहाहा! यह आस्रव-पुण्य-पाप की पर्याय और संवर-निर्जरा तथा मोक्ष की निर्मल पर्याय... आहाहा! मेरा भगवान द्रव्यस्वभाव तो इनसे अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! यह साधक की पर्याय और सिद्ध की पर्याय से भी भिन्न हूँ — ऐसा कहते हैं। संवर-निर्जरा यह साधक की पर्याय; आस्रव, पुण्य-पाप बाधक की पर्याय; मोक्ष साध्य पर्याय। आहाहा! आहाहा! इनसे भी अत्यन्त भिन्न हूँ। आहाहा! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

तब इसने आत्मा जाना — ऐसा कहा जाता है - यह कहते हैं। पर्याय के - नौ के भेद से भी अत्यन्त भिन्न हूँ, **वह मैं शुद्ध हूँ। है? इसलिए मैं शुद्ध हूँ।** यह शुद्ध की व्याख्या की। उसमें ७३ (गाथा में) शुद्ध की व्याख्या यह की है कि पर्याय में जो षट्कारक का परिणमन है, यह जो संवर, निर्जरा आदि कहे, इन षट्कारक का परिणमन शुद्ध है। इसके परिणमन से भी मेरी अनुभूति अर्थात् वस्तु है, वह अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वह ऐसा जानती-अनुभव करती है पर्याय। आहाहा! परन्तु कहते हैं कि इस अनुभव की पर्याय से मैं अत्यन्त भिन्न हूँ। आहाहा! इस पर्याय में पूरी चीज नहीं आती। पूरी चीज का ज्ञान आता है परन्तु वह चीज जो पर्याय से भिन्न है। वह पर्याय-निर्णय करनेवाली पर्याय में वह चीज नहीं आती। आहाहा! आहाहा! क्या शास्त्र! यह समयसार!

ऐसे नव तत्त्व के पर्याय के भेद अर्थात् व्यावहारिक नौ तत्त्व, ये पर्यायें व्यवहार हुईं। नौ हुए न! नौ व्यावहारिक नौ तत्त्वों से... आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष भी पर्याय है तो वह व्यवहार हो गया। आहाहा! आज रविवार है न? आये हैं न, हमारे चिमनभाई कहते हैं कि रविवार को सब अच्छा आता है। यह ऐसा मार्ग है। आहाहा! आहाहा!

आहाहा! उसमें (एक के बोल में) ऐसा कहा था — क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान व्यावहारिक भावों से भेदरूप नहीं होता। यहाँ ऐसा कहा कि पर्यायों आदि के व्यावहारिक नव तत्त्वों से मेरा एक स्वभावरूप भाव अत्यन्त भिन्न है। आहाहा!

श्रोता : वह भिन्न ही है!

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! उसमें आया है न मिट्टी का, सैंतालीस नय में। मिट्टी के बर्तन की पर्याय से देखो तो वह अशुद्धता है, कहते हैं। मिट्टी में मिट्टीरूप देखो तो वह शुद्ध है; वैसे भगवान आत्मा को, आहाहा! उसकी पर्याय से देखो तो वह अशुद्ध कहलाता है। आहाहा! १६वीं (गाथा) में आ गया है - मेचक। आहाहा! कैसी शैली तो देखो!

इस ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पर्याय से देखो तो मलिन कहलाता है - व्यवहार कहलाता है। आहाहा! भेदरूप पर्याय को व्यवहार और मलिनता कहने का व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! कहो, १६ वीं में यह कहा, और इन नयों में यह कहा, चारों ओर से देखो तो वस्तु पूर्वापर विरोधरहित सिद्ध करते हैं - ऐसी शैली दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

‘अहमेक्को खलु सुद्धो।’ यह शुद्ध की व्याख्या हुई। शुद्ध उसे कहते हैं कि पर्याय के भेदों से भिन्न, उसे शुद्ध कहते हैं। पर्याय से सहित यदि उसे कहो, तब तो वह अशुद्धता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

अब **दंसणणाणमइओ** वहाँ भी (७३ गाथा में) ऐसा है। **णाणदंसणसमग्गो** ७३ में है। ७३ में **दंसणणाण समग्गो** है क्योंकि वहाँ आस्रव को नाश करने का उपाय बतलाना है। उसे अर्थात् मैं ऐसा हूँ — ऐसा जानकर आस्रव का क्षय करता हूँ - ऐसा वहाँ ७३ (गाथा में है) यहाँ तो ऐसा हूँ — यह जानकर पर्याय के भेद मुझमें नहीं है। आहाहा! अब वहाँ ७३ में **णाणदंसणसमग्गो** था, यहाँ **दंसणणाणमइओ** है।

चिन्मात्र होने से.... भगवान ज्ञायकस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, चिन्मात्र ज्योति, चैतन्य ध्रुव ज्योति, ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों का भण्डार भगवान, ऐसा चिन्मात्र ज्योति के कारण, आहाहा! सामान्य-विशेष उपयोगात्मकता का उल्लंघन नहीं करता..... सामान्य अर्थात् दर्शन, विशेष अर्थात् ज्ञान। है न? पाठ में ही है न 'दंसण णाण' दंसण अर्थात् सामान्य और ज्ञान अर्थात् विशेष - दो हैं न? इसलिए पहले सामान्य-विशेष लिया।

एक चैतन्यमात्र भगवान आत्मा प्रकाश की मूर्ति, चैतन्य चन्द्र, शीतलता का पिण्ड प्रभु और अकेला ज्ञानमूर्ति प्रभु, आहाहा! उसके कारण सामान्य-विशेष — ऐसा जो उपयोगपने का उल्लंघन नहीं करता। मेरा स्वभाव दर्शन और ज्ञान है, उसे उल्लंघन नहीं करता। आहाहा! रागादि इसका (आत्मा का) स्वभाव नहीं और इसके स्वरूप में भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो संवर, निर्जरा, और पर्याय का भेद भी जिसके स्वरूप में नहीं है। आहाहा! अरे प्रभु! आहाहा! इसका अर्थ यह कि संवर, निर्जरा के लक्ष्य से मोक्ष नहीं होता; द्रव्य के लक्ष्य से होता है। आहाहा! आहाहा!

चिन्मात्र होने से.... यह चौथा बोल। सामान्य-विशेष उपयोगात्मकता.... के कारण... सामान्य-विशेष का — जानने-देखने के व्यापारपने के कारण उल्लंघन नहीं करता... उसके कारण उल्लंघन नहीं करता। इसलिए मैं दर्शनज्ञानमय हूँ;.... आहाहा! ऐसी पर्याय की अनुभवदशा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सामान्य-विशेष चिन्मात्र होने से, मेरे देखने-जानने के उपयोगपने को नहीं छोड़ता, उल्लंघन नहीं करता। इसलिए मैं दर्शनज्ञानमय हूँ;.... मैं दर्शन-ज्ञानवाला हूँ — ऐसा भी नहीं; दर्शनज्ञानमय हूँ। आहाहा! ऐसी टीका तो हजारों वर्ष से है, यह कहीं नयी है? अमृतचन्द्राचार्य! यह श्लोक और गाथा 2000 वर्ष पहले की और टीका हजार वर्ष पहले की है। आहाहा!

चैतन्यसूर्य को प्रकाशित करने में टीका उसकी स्पष्टता करती है टीका से। आहाहा!

'सदारूवी' स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण जिसका निमित्त है ऐसे संवेदनरूप परिणमित होने पर भी.... क्या कहते हैं? मेरा ज्ञान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण को जाननेरूप परिणमित होने पर भी, आहाहा! स्पर्श, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि, ऐसे वे जड़ जिसमें निमित्त हैं.... स्पर्श, रस, गन्ध आदि हैं; ऐसे संवेदनरूप परिणमना, वह मेरा उपादान।

उसके जानेरूप-वेदनरूप परिणमा ऐसा मैं, ऐसा (होने) पर भी, आहाहा! **स्पर्शादिरूप स्वयं परिणमित नहीं हुआ....** इस स्पर्श, गन्ध, रसरूप आत्मा नहीं होता। आहाहा! ये स्पर्श गन्ध, रूप, रस, स्पर्श इनमें जिसमें मेरा ज्ञान के वेदन में ये निमित्त हैं और इस निमित्त का जिसे वेदन है, वह निमित्त का नहीं; वेदन मेरा है, उसमें वे निमित्त हैं, तथापि वह अनरूप परिणमित नहीं होता। आहाहा!

रूपी पदार्थ के ज्ञानरूप परिणमित मैं; उस रूपीरूप मैं नहीं होता। **इसलिए मैं अरूपी हूँ**। आहाहा! समझ में आया? रूपी पदार्थ को जानने पर भी, वेदनरूप परिणमा होने पर भी, उस रूपी में स्वयं परिणमित नहीं हुआ, रूपीपने परिणमित नहीं हुआ, रूपी के अपने ज्ञानरूप परिणमित हुआ है। आहाहा! **इसलिए परमार्थ से मैं सदा ही अरूपी हूँ**। परमार्थ से मैं त्रिकाल सदा ही अरूपी हूँ। आहाहा! विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)